काग़ज़ी है पैरहन[1]

मुश्ताक़ अहमद यूसुफ़ी

(यह एक चित्रकार के चित्रों पर होने वाली व्यंग्यात्मक परिचर्चा है जो उर्दू के सबसे प्रतिष्ठित हास्य-लेखक मुश्ताक़ अहमद यूसुफ़ी की पुस्तक 'चिराग़-तले' के तेरह खटमिट्ठे निबंधों में शामिल है। यह परिचर्चा कला पर आलोचकों की बहस की पैरोडी है। इसमें यूसुफ़ी ने कला की विषयवस्तु में पुरुष की काम-वासना स्त्री के विशेष अंगों के चित्रण की प्रधानता पर व्यंग्य के साथ-साथ आलोचकों द्वारा भारी-भरकम शब्दों में अनर्गल बातें करने और कला के सम्बन्ध में उनके अहंकारी फ़ैसलों के रवैये का मज़ाक़ उड़ाया है।

परिचर्चा बिना किसी सन्दर्भ के अचानक शुरू हो जाती है। जैसे-जैसे बात आगे बढ़ती है, महसूस होता है कि गुफ़्तगू किसी चित्रशाला या प्रदर्शनी में हो रही है जहाँ चित्रकार के और भी चित्र मौजूद हैं। परिचर्चा में चित्रकार, साजिद, ज़ुबेर और मिर्ज़ा शामिल हैं। गुफ़्तगू ज़्यादातर साजिद और चित्रकार के बीच है जिसमें साजिद चित्रों पर तीखी आलोचना करता है और चित्रकार उसका उत्तर देता है। ज़ुबेर साजिद की तीखी टिप्पणी के प्रभाव को कम करने और चित्रकार के प्रोत्साहन के लिए चित्रों की प्रशंसा में कभी-कभी बोलता है। 'मिर्ज़ा' अपनी ऊटपटांग टिप्पणी द्वारा कभी-कभी बड़े पते की बात कह जाते हैं। यह वही मिर्ज़ा हैं जो मिर्ज़ा अब्दुल वदूद बेग के नाम से यूसुफ़ी के मित्र या हमज़ाद (छायापुरुष) के रूप में उनकी लगभग हर रचना में मौजूद होते हैं। यूसुफ़ी अपनी टेढ़ी-मेढ़ी व उलटी-सीधी दलीलें, विचित्र विचार, उत्तेजक व अकथनीय बातें मिर्ज़ा की ज़बान से कहलवाते हैं। यह किरदार हमें हमारी परंपरा के सुप्रसिद्ध किरदार मुल्ला नसरुद्दीन की याद दिलाता है।

बात से बात निकालना, लेखनी के हाथों में खुद को सौंपकर मानो केले के छिलके पर फिसलते जाना अर्थात विषयांतर, हास्यास्पद परिस्थितियों का निर्माण, अतिश्योक्तिपूर्ण वर्णन, किरदारों की सनक और विचित्र तर्कशैली, एक ही वाक्य में असंगत शब्दों का जमावड़ा, शब्द-क्रीड़ा, अनुप्रास अलंकार, हास्यास्पद उपमाएं व रूपक, अप्रत्याशित मोड़, कविता की पंक्तियों का उद्धरण, पैरोडी और मज़ाक़ की फुलझड़ियों व हास्य रस की फुहारों के बीच साहित्यिक संकेत व दार्शनिक टिप्पणियाँ, और प्रखर बुद्धिमत्ता यूसुफ़ी साहब की रचना शैली की विशेषताएँ हैं। उनके फ़ुटनोट भी बहुत दिलचस्प होते हैं। इस निबंध में यूसुफ़ी साहब की रचना शैली की अनेक विशेषताएँ विद्यमान हैं।-----अनुवादक)

***

साजिदः आपके इन नग्न चित्रों में कलात्मक संयम की कमी है, हालाँकि आपने अपनी निर्भीक शैली और नैतिक साहस से इसकी क्षतिपूर्ति करदी है।

चित्रकारः ज़र्रानवाज़ी है!

साजिदः इन चित्रों में आपने कामुक-भावनाओं और पाकिस्तान-दंड-संहिता दोनों को बड़ी निर्भीकता से ललकारा है। यही नहीं। इनमें चौंका देने वाले मासूम आश्चर्य की नवीनता और चमक भी है---------

[1] *ग़ालिब के दीवान की पहली ग़ज़ल के पहले शेर का टुकड़ा है:*
नक़्श फ़रियादी है किसकी शोख़ि-ए-तहरीर का // काग़ज़ी है पैरहन हर पैकरे-तस्वीर का

बुद्धिमत्ता की वह आकस्मिक चमक जो एक ऐसे मंदबुद्धि लड़के की आँखों में पैदा होती है जिसपर पहले-पहल यह भेद खुला हो कि पिश्वाज़ के नीचे सचमुच सारंगी के तार की तरह तना हुआ कटीला शरीर भी होता है।

ज़ुबैरः (गंभीरता से) अंगिया और उसकी विषयवस्तुओं की रूपरेखाओं को उभारकर कलाकार ने संभवतः काम-वासना के उफान को नुमायाँ करने का प्रयास किया है।

साजिदःमगर इस पेंटिंग से तो प्रकट होता है कि कलाकार को लू लग गई है।

ज़ुबैरः (छी-छी पूर्ण स्वर में) जनाब! जहाँ तक हैरत का ताल्लुक़ है, हमारी राय में युवावस्था की काम-लोलुपता और उबाल, अधेड़पन की उस बेदिली से बहरहाल बेहतर है जो अच्छी संगत व बुरी सेहत के मिश्रण से सौंदर्यशास्त्रीय "प्योरिटैनिज़्म" का रूप धारण कर लेती है।

साजिदः उबाल में कोई हर्ज नहीं। लेकिन यहाँ तो यह मालूम होता है कि मानसिक नकसीर फूट निकली।

चित्रकारः (जलकर) साहब! प्रश्न यह नहीं है कि नाचीज़ ने ख़ून थूका है या लार टपकाई है। यथार्थ से आँखें चुराई हैं या चार की हैं। यह उबाल, बेफ़िक्री का नतीजा है, या हाज़मे और हाफ़िज़े (याददाश्त) की ख़राबी का असर। बल्कि देखना यह है कि इन प्रभाववादी चित्रों में, जो आपके शब्दों में, मुझसे घटित हो गए हैं, कोई सुन्दरता है या नहीं?

साजिदःहै क्यों नहीं। अरे साहब! यही तो खांड के खिलौनों की कमज़ोरी होती है! सुन्दरता की अधिकता ही से आख़िर क्लासीकी कला का दम घुट गया। वो दिन गए कि कलाकार सिर्फ़ चंद्रमुखियों के लिए चित्रकारी सीखते थे। अब जानदार कला को सुन्दरता के सहारे की ज़रुरत नहीं रही। इसके विपरीत मैं देख रहा हूँ कि आपका सारा ज़ोर सिर्फ़ सौन्दर्य और वह भी नारी सौन्दर्य पर है, व्यक्तित्व पर नहीं।

मिर्ज़ाः दूसरे शब्दों में साजिद साहब की समझ से सौन्दर्य सिर्फ़ संज्ञा नहीं है। इसका सम्बन्ध संज्ञा द्वारा संकेतित इंसान बल्कि स्त्री से है।

साजिदःअगर सीधी-सादी बात इस पेचीदा शैली में आपकी समझ में आसानी से आती है तो यूँ ही सही। मैं कह यह रहा था कि निरी सुन्दरता से काम नहीं चलता। यह "तेरी प्यारी-प्यारी सूरत को किसी की नज़र न लगे" प्रकार की "उम्फ़" लड़कियाँ जो अदबदाकर हर निगाह के निशाने पर आ जाती हैं, रेगिस्तान की रात की मानिंद सूखी व ठंडी हैं। इनके यौन आकर्षण की ख़ातिर अधखुले होंठ और अधखुली आँखें, सुरमे से बनाई भौहों का एक जैसा खिंचाव, और बढ़े हुए नाखुनों की एक जैसी नोकें, एक ही तराश की जगभाती उटंगी चोलियाँ और उनकी एक सी महक-----ये सब स्ट्रीम-लाइन हो गई हैं। इनमें वज़ादारी (रीति-निर्वहन) है, बाँकपन नहीं। मुझे इनमें कोई व्यक्तित्व, कोई विशिष्टता नज़र नहीं आती।

चित्रकारः मगर विशिष्टता पर इतना बल क्यों? यह सरासर एक अलोकतांत्रिक भावना है, साजिद साहब! आपने पंजाबी का वह कथन सुना होगा "रन ते अन्न नूँ निन्दना नहीं चाही दा"। यानी अन्न और नारी में मीन-मेख़ नहीं निकालना चाहिए।

साजिदः इस तरह की भावनात्मक रतौंधी गृहस्थी जीवन में बड़ी उपयोगी साबित होती है। मगर आर्ट सूझ-बूझ चाहता है। आर्टिस्ट इस तरह की आस्था को दुम्बे की चकती की तरह लटकाए फिरे, यह आर्ट से अधिक आस्था का उपहास है ।

ज़ुबैरः लेकिन सवाल यह पैदा होता है कि भला आर्ट का मूल विषय क्या है?

मिर्ज़ाः यथार्थ उर्फ़ स्त्री!

साजिदः चलिए, बहस ख़त्म करने के लिए यह माने लेते हैं। लेकिन इन चित्रों में रंगों के चटकीलेपन से अधिक शरीर के कटाओं और उभारों के तीखेपन पर ख़ून-ए-जिगर बरबाद किया गया है। अब इस तैलीय-चित्र को ही लीजिए, जिस्म के पेचोख़म वाक़ई ऐसे हैं कि अगर यह लड़की मूसलाधार बारिश में खड़ी हो जाए तो मजाल है कि पैरों पर एक छींटा भी पड़ जाए।

मिर्ज़ाः आपका संकेत ग़ालिबन अकथनीय गोलाइयों और नज़र में चुभने वाले कोणों की तरफ़ है ।

चित्रकारः दृष्टि-उत्पीड़न के लिए क्षमा चाहता हूँ। अगर शरीर को रंदे से छील-छालकर पेश करना ही सौन्दर्य की रचना है तो मेरा दूर ही से सलाम। रहा रंगों के चटकीलेपन का मामला, तो निवेदन है कि मैंने उनमें ठेठ आंचलिक रंग भरा है। यानी मटियाला जो कराची का असली रंग है। इसे मेरी कमनज़री कह लीजिए मगर यह सच है कि मुझे मेहंदी लगी उँगलियाँ, संदली बाहें, दहकते मुखड़े, लाल होंठ, चम्पई बदन, और उन पर ऊदी-ऊदी नसों के पारंपरिक जाल, नीलम आँखें और उनके बारीक-बारीक गुलाबी डोरे सिवाय मुग़ल आर्ट और इस्लामी उपन्यासों के कहीं दिखाई नहीं देते। सच यह है कि कराची में पेड़ भी हरे नहीं होते। धूप और धूल से उनका रंग ख़ाकी हो जाता है। नहीं साहब! मैं चटकीलेरंग के छींटों से चित्र को लाल-चुहचुहा करने में असमर्थ हूँ। पिकासो के उदास-उदास नीले रंग

मिर्ज़ा (बात काटकर) सच तो यह है कि कराची में तबीयत के सिवा कोई चीज़ हरी नहीं होती।

चित्रकारः मिर्ज़ा साहब! और कॉफ़ी लीजिए थोड़ी सी।

मिर्ज़ाः शुक्रिया! आज बहुत चढ़ा गया। पेट में अलगोज़े से बज रहे हैं।

साजिदः शायद मैं अपना मतलब स्पस्ट नहीं कर सका। मिसाल के तौर पर यह एकरंगा रेखाचित्र देखिये। चेहरे की रेखाएँ कितनी समानांतर और समान हैं। बिल्कुल आयताकार मालूम होता है।

चित्रकारः कारण स्पष्ट है। यह एक किताबी (लम्बोतरा) चेहरा है।

साजिदः किताब यौन-विज्ञान की मालूम होती है।

चित्रकारः फब्ती से आदमी लाजवाब हो जाता है, क़ायल नहीं होता। अलबत्ता एकरंगी के सम्बन्ध में निवेदन है कि दुर्भाग्य से आपने एक ही मॉडल के लगातार चार चित्र देख डाले। आप ख़ुद वाक़िफ हैं कि यूँ तो कराची की निशाकालिक नृत्यशालाओं में सीना-ज़ोर भी हैं और फटे-दामन वालियाँ भी मगर---

मिर्ज़ाः तो सीधी तरह क्यों नहीं कहते कि यह कुमारी फटे-दामन का चित्र है।

चित्रकारः (नोटिस न लेते हुए) मगर वे सब चित्रकार की आँखों से ओझल और पहुँच से बाहर हैं। रहीं मध्य वर्ग

परिवारों की लड़कियाँ, तो उनका हाल यह है कि कोई अल्लाह की बन्दी बुर्क़ा ओढ़कर भी मॉडल बनने के लिए राज़ी नहीं होती। हालात का इससे अंदाज़ा लगाइए कि यहाँ का एक क़ाबिल मगर कंगाल आर्टिस्ट (जो तीन दफ़ा नुमाइशों में पुरस्कार पा चुका है) सिर्फ़ औरत की आवाज़ सुनने के लिए हर हफ़्ते फ़ोन पर 04 से समय मालूम करता है। नतीजा यह है कि हमारे स्टूडियो काल्पनिक मूर्तियों से आबाद रहते हैं।

मिर्ज़ाः जभी तो बेचारे अमूर्त-चित्रकार चील-बिलौटे बनाते रहते हैं।

ज़ुबैरः शायद इसी एकरंगी का नतीजा है कि कुछ चित्रों से पता नहीं चलता कि"फ़ोकस" किस अंग पर है। पेंटिंग में यह नहीं देखा जाता कि चित्रकार ने क्या उजागर किया है, बल्कि पारखी दृष्टि वाले यह देखते हैं कि क्या-क्या ढका-छिपा हुआ है। मॉडल लाख सुडौल सही, लेकिन चित्रकार की मंझी हुई पारखी दृष्टि बहुत जल्द यह कष्टप्रद निर्णय ले लेती है कि किस अंग को फ़ोकस किया जाए, क्योंकि-

---

मिर्ज़ाः मोर की दुम उसके मुँह से बेहतर होती है।

साजिदःमालूम नहीं आपको जॉन सार्जेंट की उत्कृष्ट कृति "अजनबी महिला" देखने का इत्तेफ़ाक़ हुआ या नहीं। सभ्य समाजी हलक़ों में उसके खुले हुए गिरेबान पर बड़ी ले-दे हुई थी। उसका पूरा व्यक्तित्व दो दायरों में निचुड़कर आ गया है।

मिर्ज़ाः आये है जुज़्व (अंश) में नज़र कुल का तमाशा हमको[1]!

साजिदःगंभीर बहस में सूफ़ियाना शायरी से परहेज़ कीजिए।

मिर्ज़ाः मैं मिसरा वापस लेता हूँ।

चित्रकारः दृष्टिकोण की अहमियत से किस काफ़िर को इनकार है। लेकिन साहित्य-मंडली की पिछली बैठक में आपने जिस ज़नाने TORSO (धड़) के परखच्चे उड़ाए थे उसमें मुझे दृष्टिकोण का दोष नज़र नहीं आता।

साजिदः गुस्ताख़ी माफ़ ! इसमें दृष्टि कम है और कोण ज़्यादा। आपने आवर्धक लेंस से अपने मॉडल को देखा है। माना कि लघुता हास्य और ज़नाना लिबास की जान है। मगर तकल्लुफ़ बर-तरफ़, इस तस्वीर में तो सीना ओछे के अहसान की तरह खुला हुआ है।

मिर्ज़ाः मॉडल सिर्फ़ शिक्षा के गहने से सुसज्जित है!

ज़ुबैरः लेकिन इस में संदेह नहीं कि चित्रकार त्रि-आयामी प्रभाव पैदा करने में सफल रहा है।

साजिदः इसकी वजह यह है कि उसने अपनी कनखियों से दर्ज़ी के फ़ीते का काम लिया है। (झुंझलाकर) और ज़रा देखिए यह दूसरी न्यूड। प्याला सा मुँह खोले, कटोरा सी आँखों से टुकुर-टुकुर देख रही है।

---

[1] *क़तरा में दजला दिखाई न दे और जुज़्व में कुल // खेल लड़कों का हुआ दीदा-ए-बीना न हुआ (मिर्ज़ा ग़ालिब)*
यानी अगर हमारी आँखें एक बूँद में दजला (दरिया) और अंश में पूर्ण न देख सकें तो ये देखने वाली आँखें नहीं हईं बल्कि बच्चों के काल्पनिक खेल की तरह ये आँखें भी आवास्तविक हुईं। (अनु.)

चित्रकारः (आपे से बाहर होते हुए) यह कसेरों[1] की शब्दावली है। चित्रकारी से इनका कोई वास्ता नहीं। लेकिन मैं पूछता हूँ, क्या आपको इसमें और कुछ दिखाई नहीं देता?

मिर्ज़ाः आँख जो कुछ देखती है लब पे आ सकता नहीं!

ज़ुबैरः सामंजस्य वाक़ई क़ाबिल-ए-तारीफ़ है।

साजिदः इससे इनकार नहीं कि हर चूल ठीक ठुकी हुई है। मगर इस नंगे-बुच्चे चित्र में कोई परिवेश, कोई सन्देश नहीं।

मिर्ज़ाः सन्देश-वन्देश अपने पल्ले नहीं पड़ा। अगर है तो यक़ीनन आदमक़द क़िस्म का होगा। अलबत्ता परिवेश ज़रूर है। जापानी हम्माम के जैसा! और नहीं तो!

साजिदःआपने मेरे मुँह की बात छीन ली।

मिर्ज़ाः शुक्रिया!

चित्रकारः पेंटिंग और सन्देश? आख़िर आप छलनी से बाल्टी का काम क्यों लेना चाहते हैं?

ज़ुबैरः (समझौते के अंदाज़ में) मैं इस सिलसिले में आपका ध्यान फ़र्नार्ड की "नहाने वालियाँ", कोरबे की "घाट पे गोरी" और रेन्वार की "सूर्य-स्नान"की ओर आकर्षित कराऊँगा।

साजिदः सिवाय विषयवस्तु के मुझे किसी बात में उनसे समानता नज़र नहीं आती। इसमें यौन की उमस है, स्नान की ताज़गी नहीं। (अंदाज़ एकाएक भाषणात्मक हो जाता है) मैं कहना यह चाहता था कि कोई शालीन आदमी, अगर वह पेशेवर जासूस न हो, शयन कक्ष के छिद्र पर अपने निद्राविहीन नयन नहीं रखता। अदर्शनीय पक्षों पर प्रकाश डालना मलिन मानसिकता का लक्षण है और मलिन मानसिकता और मलिन मुँहफटई दोनों की असल वजह हाज़मे की ख़राबी है। काया का कसाव, भरे-भरे बाज़ू, थलथलाती जाँघें, क्यूपिड की खिंची हुई कमानें-----यही वो घिसी-घिसाई खूँटियाँ हैं, जिनपर काली कॉफ़ी पी-पीकर बहकने वाले भोगवादी विलासी अपनी अधकचरी भावनाएँ टाँगते चले आए हैं। यही देखा- भाला जिस्म जो अपनी आभा खोकर भी न जाने क्यों हर बार नया-नया सा लगता है, वह मीनार है जिसकी बुलंदियों से आधुनिक कलाकार बुलावा देता है और पुकार पुकारकर कहता है------

मिर्ज़ाः कूद जाऊँ सातवीं मंज़िल से आज
आज मैंने ज़िन्दगी को पा लिया है बेनक़ाब

साजिदः आप अपने तोशाख़ाने से ये अजीबो-ग़रीब चीज़ें निकालना बंद करें तो मैं आगे बढ़ूँ। आपको बात-बेबात टोकने की बड़ी बुरी आदत है।

मिर्ज़ाः माफ़ी चाहता हूँ। मुझे बिल्कुल याद नहीं रहा कि आपको साहित्य से दिलचस्पी नहीं।

चित्रकारः छोड़िए इस क़िस्से को। आपको इसकी सादगी में पुरकारी[II] (अय्यारी) नज़र नहीं आती तो मुँह का

---

[1] *कसेरः काँसे, पीतल और कांसे आदि के बर्तन बनाने और बेचने वाला; ताम्रकार।*

[II] *सादगी व पुरकारी बे-ख़ुदी व हुशियारी // हुस्न को तग़ाफ़ुल में जुर्रत-आज़मा पाया (मिर्ज़ा 'ग़ालिब')*

मज़ा बदलने के लिए इस वाटर-कलर को देखिये। यह एक उम्र से उतरी हुई स्वच्छंद और संतुष्ट स्त्री का चित्र है जिसको मैंने जिमख़ाने में अकेले बियर पीते देखा था। मैंने उससे वक़्त पूछा, जवाब में उसने फ़ोन नम्बर बताया जो मैंने नोट कर लिया।

साजिदः तकनीक के लिहाज़ से यह पिछले चित्र का उलट है। आपने गालों की झुर्रियों पर बड़ी मेहनत और मुहब्बत से इस्त्री की है मगर आँखों के कोनों पर महीन-महीन रेखाएँ चुग़ली खा रही हैं कि समय की मकड़ी दबे पाँव जाला बुनकर इसका सारा रूप खा गई।

मिर्ज़ाः दहाने (मुख) के दोनों तरफ़ ब्रैकेट भी तो लगे हुए हैं।

साजिदः इसमें आपने जिस्म के कटावों और उभारों के बोझिल फैलाव और गुनगुने रंगों के इस्तेमाल से वह सुडौलपन और मांसलता भी स्पष्ट कर दी जो अधेड़ उम्र का हरावल दस्ता है। उतार-चढ़ाव साफ़ कह रहा है कि पहले जहाँ ढलान थी वहाँ अब उठान है।

मिर्ज़ाः और पहले जहाँ उफान था, वहाँ अब सिर्फ़ निशान है, और पेट पर चर्बी की तहों के अलावा यह भी देखें ----वह एक मुँह जो बज़ाहिर मुहाने से कम है[i]

साजिदः जी हाँ! सुन्दर तो किसी तरह से नहीं मालूम होती।

चित्रकारः मैंने कब यह दावा किया कि इसके पौने दो सौ पौंड में एड़ी से चोटी तक कूट-कूटकर मोहनी भरी है।

साजिदः शायद आपने जानबूझकर यह सूजी हुई हालत पैदा की है। मुँह कुछ भुरभुराया हुआ सा है। ऐसा लगता है जैसे आउट-ऑफ़-फ़ोकस फ़ोटो।

चित्रकारः एक ख़ास उम्र के बाद हर औरत आउट-ऑफ़-फ़ोकस मालूम होती है, जनाब!

साजिदः उम्र किसकी ? अपनी या ------?

ज़ुबैरः आपने ध्यान दिया? इस चित्र की बेझिझक शैली और मांसलता रेम्ब्राँ की नंगी "शीबा"और तितियान की नग्न "वीनस और संगीतकार" से कितनी मिलती-जुलती है।

साजिदः बस इतना अंतर है कि यहाँ चित्रकार ने कपड़े पहनाकर मुसलमान कर दिया है।

मिर्ज़ाः आर्ट की देवी वहाँ बेपर्दा यहाँ महमिल (पर्दे) में है[ii]।

ज़ुबैरः आपको बेपर्दगी पर आपत्ति है या महमिल पर?

साजिदः जी नहीं! मेरी आपत्ति यह है कि महमिल ख़ाली है।

मिर्ज़ाः और हमें शुरू से ऊँट की सवारी पर आपत्ति है।

---

[i] *मिर्ज़ा ग़ालिब के निम्नलिखित शेर की पैरोडीः*
बहुत दिनों में तग़ाफ़ुल ने तेरे पैदा की // वो एक निगह जो बज़ाहिर निगाह से कम है

[ii] *असग़र गोंडवी के निम्नलिखित शेर की ओर संकेतः*
कारवान-ए-हुस्नो-इश्क़ अब तक कहीं ठहरा नहीं // क़ैस अभी सहरा में है लैला अभी महमिल में है।
महमिलः अर्थात ऊँट का पर्देदार कजावा; शेर का अर्थ है हुस्न और इश्क़ का सफ़र अभी जारी है। क़ैस (मजनूँ) अभी रेगिस्तान में भटक रहा है और लैला महमिल (परदेदार कजावे) में बैठी है।

चित्रकारः मैं पूछ सकता हूँ कि इन बातों का इस चित्र से क्या सम्बन्ध है?

साजिदः यह मिर्ज़ा साहब से पूछिए जिन्होंने यह चिंगारी छोड़ी है। मुझे जो बात इस चित्र में खलती है वह इसका अलंकरण है। देखिए तो! बिल्कुल गौने के लिए तैयार दुल्हन मालूम होती है! बनाव-सिंगार हर औरत का अधिकार है बशर्तेकि वह इसे अपनी ज़िम्मेदारी न समझ ले। लेकिन ------

मिर्ज़ाः बूढ़ी घोड़ी लाल लगाम!

चित्रकारः (जलकर) इससे अधिक आपत्तिजनक वह घोड़ी है जो बूढ़ी भी हो और बेलगाम भी।

ज़ुबैरः गोली मारिये दोनों घोड़ियों को! इधर देखिए। यह ईज़ल पर रखी हुई सुडौल पिंडली वाली नर्तकी का चित्र काफ़ी विचारोत्तेजक है।

साजिदः इसमें हिर-फिरके वही लड़की की एक टांग है।

मिर्ज़ाः (ठंडी आह भरकर) काश कनखजूरे की तरह इसकी हज़ार टांगें होतीं और यह शीर्षासन करती हुई बेधड़क निकल जाती।

साजिदः बखुदा मुझे तादाद पर कोई ऐतराज़ नहीं।

मिर्ज़ाः क़सम खुदा की! काँटा-तौल चीज़ है।

चित्रकारःयह मिस्र की एक कुँआरी नर्तकी का चित्र है जो पिछले हफ़्ते एक नृत्य-मंडली के साथ कराची आई थी। बस आध घंटे की एक बैठक इसी होटल में रही, जो जान और जेब की गहराइयों में उतर गई।

साजिदः मैंने भी शनिवार की रात को "कलिप्सो" की तेज़ ताल पर उसका नाच देखा था।-----"कला काया के लिए" का इससे बेहतर प्रदर्शन अब तक देखने में नहीं आया।

ज़ुबैरः तौबा-तौबा! इस क़दर अश्लील दृश्य था कि किसी का आँख झपकाने को जी नहीं चाहता था।

मिर्ज़ाः नाचने ही को जो निकले तो कहाँ का घूँघट।

साजिदः मैं नहीं कह सकता कि कलाकार के लिए घूँघट किस हद तक ग़ैरज़रूरी है, लेकिन -----

मिर्ज़ाः यह घूँघट के साइज़ पर निर्भर है।

साजिदः लेकिन कला की गरिमा का आधार इसी पर है और यही कारण है कि इस चित्र में प्रतीकात्मकता की कमी शिद्दत से महसूस होती है। इसमें मोनालिसा की मुस्कान की तरह सोच में डालने वाली कोई बात नहीं। चित्रकार ने अपना प्रयोजन उर्दू अख़बारों की मोटी सुर्ख़ियों की तरह बेहद स्पष्ट और खुल्लम-खुल्ला प्रकट कर दिया है। आपको वह कथन याद होगा कि शीलवान आदमी की पहचान यह है कि वह मर्लिन मुनरो के सरापा की गोलाइयों को हाथ हिलाए बिना बयान कर सके।

चित्रकारः माई-बाप! यह सर्द-गर्म चखे शरीर का प्रभाववादी अध्ययन है। इन पर मैडोना जैसे मासूम चेहरों की क़लम नहीं लग सकती। अगर आप चीनी की गुड़ियों जैसे चेहरे देखना चाहते हैं, जिनके लज़्ज़त से अनजान होंठों से छठी के दूध की बू आती हो, तो इन चित्रों से आँखें फेर लीजिए। मैं अपने सिर पर यह कोहे-क़ाफ़ लादने में असमर्थ हूँ। अब से पचास साल पहले रूमानी कलाकार और कला-मर्मज्ञ लोग

यथार्थ अर्थात स्त्री में वही गुण तलाश करते थे जो आज के ज़माने में सिर्फ़ "कोका कोला" और "ओल्टन" में पाई जाती है। यानी किसी इंसानी हाथ ने न छुआ हो। एशिया ने मानव शरीर को हमेशा एक पवित्र अमानत समझा और भौतिक मलिनताओं से दूर रखा।

मिर्ज़ाः भोग-विलास से दूर रखा कहिए।

चित्रकारः इसलिए हमारी संस्कृति में इसका सही स्थान और ओहदा सलीब (सूली) है न कि सेज।

साजिदः मुझे खुशी है कि आपने ग़ुस्से में दो-चार रेडीमेड जुमले दाग़ दिए।

मिर्ज़ाः इस लिहाज़ से आपने भी आज सबक़ बुरा नहीं सुनाया, साजिद साहब!

चित्रकारः आपने पढ़ा होगा और पढ़ा नहीं तो सुना ज़रूर होगा कि महारानी विक्टोरिया के ज़माने में प्यानो, मेज़ और कुर्सी के पायों पर ढीले-ढाले मोटे ग़िलाफ़ चढ़ाए जाते थे। क्योंकि भद्रजन नंगे पायों को निगाह भरके नहीं देख सकते थे। और तो और महफ़िल में "रूमाल" का लफ़्ज़ ज़बान पर लाना बदतमीज़ी की बात समझी जाती थी। हालाँकि उपस्थित जनों को एक दूसरे की नाक या उसके बहने पर कोई आपत्ति न थी। हमारे यहाँ अब भी इस्मत चुग़ताई के "लिहाफ़" से ठंडे पसीने छूटने लगते हैं और शरीफ़ बहू-बेटियाँ मंटो की कहानियाँ पाँचवीं-छठी बार पढ़ते समय भी शर्म से पानी-पानी हो जाती हैं।

साजिदः लाज-शरम औरत का गहना है।

मिर्ज़ाः शायद इसीलिए आजकल सिर्फ़ ख़ास-ख़ास मौक़ों पर पहना जाता है।

चित्रकारः आख़िर आपको शरीर पर क्या आपत्ति है?

साजिदः शरीर पर आपत्ति सिर्फ़ आत्माओं को हो सकती है। मुझसे पूछिए तो बीसवीं सदी का सबसे बड़ा कारनामा यह है कि इसने शरीर की महिमा और माँगों को माना और मनवाया। लेकिन मुझे शरीर की अकलात्मक नुमाइश पर हमेशा आपत्ति रही है। इस प्रकार की कला का बड़ा दर्दनाक अंजाम होगा।

मिर्ज़ाः यानी यह यूनिवर्सिटी के पाठ्यक्रम में शामिल कर ली जाएगी?

ज़ुबैरः बहरहाल साजिद साहब की यह राय सही है कि नग्नता कला के लिए घातक है।

साजिदः मुमकिन है कि यह सही हो। मगर यह राय मेरी नहीं है! दरअसल नग्नता के लिए कला सबसे बड़ा ख़तरा है। मेरा मानना है कि मुकम्मल नग्नता से कहीं ज़्यादा ख़तरनाक और नैतिकता-नाशक वह आधा अन्दर-आधा बाहर वाला आँख-मिचोली खेलता गुप्तांग-आच्छादन है जो पतनोन्मुख कल्पना को उकसाता है। जेकब एप्स्टाइन की मूर्तियाँ देखकर मेरे शरीर में चींटियाँ सी नहीं रेंगतीं, लेकिन अगर उन्हें नायलॉन के बुर्क़े पहना दिए जाएँ तो मैं अश्लील क़रार दूँगा।

मिर्ज़ाः यानी *अलफ़ नंगा नंग-ए-तन, नीम-बरहना ख़तरा-ए-फ़न*[1]।

साजिदः याद करो हिज्जे और मतलब।

---

[1] *पूरा नंगा तन का बेशर्म, आधा नंगा कला के लिए जोखिम। (अनु.)*

ज़ुबैरः (हँसकर) गर्म मुल्कों में बिना तुकबंदी के बात आसानी से समझ में नहीं आती।

चित्रकारः अगर मैं ग़लत नहीं समझा आप नग्नता को इतना दोषपूर्ण नहीं समझते जितना इंजीर के पत्ते को!

साजिदः दुरुस्त! इंजीर का पत्ता न सिर्फ़ पाप-बोध का एक अर्थगर्भित प्रतीक है बल्कि पाप का प्रलोभन भी है।

ज़ुबैरः और पाप की घोषणा भी!

मिर्ज़ाः जिनपे तकिया था वही पत्ते हवा देने लगे[i]!

ज़ुबैरः आज की बहस से हम इस सुखद निष्कर्ष पर पहुँच रहे हैं कि कला का प्रयोजन वही है जो एशियाई लिबास का-------यानी जिस्म की ख़ूबियों को छिपाना और ख़ामियों को उभारना। इस दृष्टिकोण से नग्नता अकलात्मक भी है और अलाभकारी भी।

साजिदः मैं सिर्फ़ अकलात्मक कहना काफ़ी समझता हूँ। इसलिए कि नग्नता के उपयोगितावादी पक्ष की उपेक्षा नहीं की जा सकती। वह दिन दूर नहीं जब नग्नता जो अब तक अजीब बात समझी जाती है, सार्वजनिक कल्याण के लिए वैध क़रार दी जाए। इस स्थिति में नंगी तस्वीरें दमित यौन-इच्छा वाले लाइलाज रोगियों की "क्षीण दृष्टि-शक्ति" के इलाज के लिए नुस्ख़े में लिखी जाएँगी। अश्लील पुस्तकों की रचना और प्रकाशन के लिए सरकार की ओर से वित्तीय सहायता मिलेगी। इस प्रकार के दृष्टिवर्धक चित्र हर चिकित्सालय की आर्ट गैलेरी में लगाए जाएँगे और मूर्तियाँ म्यूज़ियम में रखी जाएँगी। ज़रुरतमंदों को मनोवैज्ञानिक परीक्षण के बाद प्रवेश के पास मिलेंगे।

मिर्ज़ाः मगर शायरों को बिना परीक्षण के अन्दर आने की अनुमति होगी।

साजिदःदेखने वालों में बड़ी संख्या सठियाए हुए सेठों की होगी जो अपनी उम्र को इनकम-टैक्स की तरह छिपाते हैं। या उन निकम्मे बुज़ुर्गों की जिनकी हालत उन ज़िद्दी बच्चों जैसी होती है जिनका अभी-अभी दूध छुड़ाया गया हो।

मिर्ज़ाः वाक़ई जहाँ काम-लोलुपता इतनी आम बात हो कि हर मुँह से चूती हो, जहाँ लोग असल से कचियाते और अक्स पर जान देते हों, वहाँ इन चित्रों की उपयोगितावादी हैसियत से इनकार नहीं किया जा सकता। इन हालात में तो सचमुच

ईदे-नज़्ज़ारा है तस्वीर का उरियाँ होना[ii]

साजिदःजी हाँ! पराभूत आत्मा की अंतिम पनाह-गाह शरीर ही तो है। आदम के पतन से लेकर इस समय तक शौक़ की थकन ये पनाहें गढ़ती रही है[iii]। इस बढ़ती हुई समाजी ज़रुरत के अहसास ने आधुनिक

---

[i] *बाग़बाँ ने आग दी जब आशियाने को मेरे // जिनपे तकिया था वही पत्ते हवा देने लगे (साक़िब लखनवी)*

अर्थात जब माली ने मेरे घोंसले को आग लगाई तो जिन पत्तों पर मैंने तकिया (भरोसा) किया था वही पत्ते आग को भड़काने लगे (अनु.)

[ii] *इशरते-क़त्ल गहे-अहले-तमन्ना मत पूछ // ईदे-नज़्ज़ारा है शमशीर का उरियाँ होना (मिर्ज़ा ग़ालिब)*

आशिक़ों की क़त्ल-गाह के मज़े को मत पूछ। तलवार का नंगा होना उनकी नज़रों के लिए ईद है। (अनु.)

[iii] *दैरो-हरम आइना-ए- तकरारे-तमन्ना // वामांदगी-ए-शौक़ तराशे है पनाहें (मिर्ज़ा ग़ालिब)*

मंदिर-मस्जिद दर्पण हैं तमन्नाओं के बार-बार उभरने या ज़ोर मारने के// शौक़ (इश्क़, लगन या जोश) की थकान पनाहें गढ़ रही है। (अनु.)

कलाकार को मजबूर कर दिया है कि वह अभिव्यक्ति के माध्यम को आजीविका के माध्यम के तौर पर बरते।

मिर्ज़ाः और सच पूछिए तो यही असल वजह है इसकी बेक़द्री की। बक़ौल मीरः

सन्नाअ हैं सब ख़्वार, अज़ आँ जुमलह हूँ मैं भी
है ऐब बड़ा उसमें जिसे कुछ हुनर आवे[1]

साजिदः 'मीर' की भी भली चलाई। उस ज़ालिम के बहत्तर नश्तरों[2] से स्वस्थ शायरी को उतना ही नुक़सान पहुँचा जितना बहत्तर फ़िर्क़ों (सम्प्रदायों) से इस्लाम को।

ज़ुबैरः बहरहाल चित्रकार इस लिहाज़ से बधाई का पात्र है कि इन बोलते हुए चित्रों में अतृप्त कामनाओं की झलक दिखाई देती है।

साजिदःमैं आपसे सहमत हूँ। चित्रकार ने एक ग़लत मंज़िल की तरफ़ सही क़दम उठाया है और यह हमारे देश के उस आम चलन से कई गुना बेहतर है कि सही मंज़िल की तरफ़ ग़लत क़दम उठाया जाए।

ज़ुबैरः आपकी ज़बान से अमान पाऊँ तो कुछ अर्ज़ करूँ (विराम) बड़ी कला में कोई दिशा नहीं होती।

मिर्ज़ाः गुस्ताख़ी माफ़। "बड़े" और "छोटे" की शब्दावली अकलात्मक है। इसका सम्बन्ध एक ऐसे पेशे से है जिसमें तूलिका के बजाय एक धारदार हथियार प्रयोग होता है।

साजिदःअजीब बात है कि जब कला में चार पैसे कमाने की गुंजाइश निकल आये तो लोग इसे पेशा कहने लगते हैं। हमारे यहाँ फ़िक्र व फ़ाक़ा फ़न[3] के लिए ज़रूरी ख़याल किया जाता है।

ज़ुबैरः कुछ भी हो। हम चित्रकार के भावनाओं की प्रगाढ़ता और खुलूस (निष्कपटता) से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते।

साजिदः यहाँ ख़ाली खूली खुलूस से काम नहीं चलने का। बिच्छू बड़े खुलूस से डंक मारता है, और बकरी बेहद खुलूस से मिमियाती है। लेकिन हम इसे कला नहीं कहते। यह न भूलिए कि कला को जितना नुक़सान खुलूस की खुल्लम-खुल्ला अभिव्यक्ति से पहुँचा है उतना सरकारी सरपरस्ती से भी नहीं पहुँचा। मैं खुलूस का खुले-डले अंदाज़ में इज़हार सिर्फ़ दुआ और क़र्ज़ माँगते समय जायज़ समझता हूँ। कला संयम और ठहराव का तक़ाज़ा करती है। कला तपस्या चाहती है। सिर्फ़ दिल चीरकर दिखाना काफ़ी नहीं।

---

[1] *सन्नाअ : कारीगर; हुनरमंद ; ख़्वारः ज़लील, बेक़द्रो-क़ीमत, परेशान ; अज़-आँ जुमलहः उनमें से*
अर्थातः सब हुनरमंद परेशान हाल और बेआबरू हो गये हैं और उनमें से एक मैं भी हूँ। आदमी का हुनर ही दरसल उसका ऐब हो गया है। (अनु.)

[2] *बहत्तर नश्तरः एक ज़माने तक मीर के आलोचक कहते रहे कि उनकी ग़ज़लों में सिर्फ़ बहत्तर उत्कृष्ट शेर हैं जो दर्द-व- ग़म में डूबे हैं और हमारे दिल पर नश्तर चलाते हैं। लेकिन अब यह ख़याल ग़लत साबित हो चुका है। उनके दीवान में हज़ारों उत्कृष्ट शेरों की निशानदेही हो चुकी है और उनमें दर्द-व-ग़म के आलावा ज़िंदगी के रंगा-रंग अनुभव मौजूद हैं।*
बहत्तर फ़िर्क़ेः मान्यता है कि क़यामत क़रीब आने पर इस्लाम में बहत्तर फ़िर्क़े हो जाएँगे। (अनु.)

[3] *फ़िक्र – चिंतन, चिंता ; फ़ाक़ा - उपवास; फ़न - कला (अनु.)*

मिर्ज़ाः हमारे कलाकार बहुत काहिल और बहाने-बाज़ हैं-------पसीने की जगह सिर्फ़ अपना ख़ून बहाकर काम निकालना चाहते हैं।

(चिराग़ तले)

अनुवादक : डॉ. आफ़ताब अहमद
व्याख्याता, हिंदी-उर्दू, कोलंबिया विश्वविद्यालय, न्यूयॉर्क